An introduction to The Samba-purana, dealing with the historical background of the worship of Sun God. The Devanagari edition of this text has been edited by Pandit Shri Gaurikant Jha and a rich introduction in Hindi is written by Bhavanath Jha

साम्ब-पुराण की भूमिका

पं. भवनाथ झा

एम. ए. (संस्कृत) एवं साहित्याचार्य,
प्रकाशन एवं शोध पदाधिकारी
महावीर मन्दिर, पटना
(बिहार)

नाम – **पं. भवनाथ झा**
पितृनाम – पं. अमरनाथ झा
जन्मस्थान – हटाढ़ रुपौली, झंझारपुर,
मधुवनी (विहार)
जन्मतिथि – 23 सितम्वर, 1968 ई.
शिक्षा – एम. ए. (संस्कृत), साहित्याचार्य
प्रकाशित रचना –

(1) **बुद्धचरितम्** (अश्वघोष कृत महाकाव्य के अनुपलव्ध अंश का संस्कृत भाषा में काव्यमय अनुवाद), महावीर मन्दिर प्रकाशन से 2013 में प्रकाशित।

(2) **भ्रूण-पंचाशिका**- (कन्या-भ्रूणहत्या विषयक 50 श्लोकों का संस्कृत प्रबन्धकाव्य)

मातृभाषा मैथिली में दर्जनों कथाओं का विभिन्न पत्रिकाओं एवं संग्रहों में प्रकाशन।

सम्पादन –

(1) **अगस्त्य-संहिता**
(2) **दुर्गासप्तशती**
(3) म. म. परमेश्वर झा कृत **यक्षसमागमम्**
(4) म. म. रुद्रधर कृत **पुष्पमाला**
(5) म.म. पशुपतिकृत **व्यवहाररत्नावली**
(6) म.म. रुचिपतिकृत **नाह्निदत्तपञ्चविंशतिकाविवरणम्**।

धर्मायण, महावीर मन्दिर, पटना से प्रकाशित धार्मिक एवं सांस्कृतिक शोधपरक पत्रिका।

विशेष दक्षता –

मिथिलाक्षर एवं देवनागरी की पाण्डुलिपियों से सम्पादन का विशेष अनुभव।

सम्प्रति – प्रकाशन एवं शोध पदाधिकारी, महावीर मन्दिर, पटना
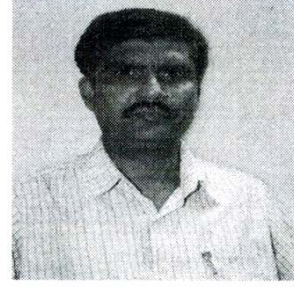
भूमिका

साम्ब-पुराण अठारह उपपुराणों में प्रायशः प्राचीनतम है। इसमें भगवान् सूर्य की आराधना की आगमशास्त्रीय विधि साङ्गोपाङ्ग वर्णित है। कृष्ण एवं जाम्बवती के पुत्र साम्ब इस पुराण के श्रोता हैं, जिन्होंने साक्षात् भगवान् सूर्य, नारद एवं वसिष्ठ से ज्ञान, भक्ति एवं क्रिया का उपदेश प्राप्त किया है।

पौराणिक साहित्य में अनेक स्थलों पर अठारह महापुराणों के साथ-साथ उपपुराणों की भी विभिन्न सूची मिलती है जैसे- स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड, प्रभासखण्ड, सूतसंहिता, शिव-माहात्म्यखण्ड, सौरसंहिता, पद्मपुराण के पाताल-खण्ड, देवीभागवत के प्रथम-स्कन्ध, कूर्मपुराण के पूर्वार्द्ध के प्रथम अध्याय, बृहद्धर्मपुराण, औशनसोपपुराण के विन्ध्यमाहात्म्य, एकाम्रपुराण, पराशरोपपुराण, वारुण-पुराण, मुद्गल-पुराण आदि में यह सूची मिलती है। इसके अतिरिक्त गोपालदास कृत भक्ति-रत्नाकर एवं मित्रमिश्र के 'वीरमित्रोदय' में ब्रह्मपुराणोक्त सूची उद्धृत है। मधुसूदन सरस्वती कृत 'प्रस्थानभेद' में भी एक सूची दी गयी है। अठारह उपपुराणों की इन सभी सूचियों में साम्ब-पुराण का उल्लेख हुआ है। हेमाद्रि (१२६०-७० ई०) ने भी चतुर्वर्ग-चिन्तामणि के व्रत-खण्ड में प्रथम अध्याय में यह सूची इस प्रकार दी है-

अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु।
आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतः परम्।।

तृतीयं नान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम्।
चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितम्।।

दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदोक्तमतः परम्।
कापिलं मानवञ्चैव तथैवोशनसेरितम्।।

ब्रह्माण्डं वारुणञ्चैव कालिकाह्वयमेव च।
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसञ्चयम्।
पराशरोक्तं प्रथमं तथा भागवतद्वयम्।।

नाग प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित 'आद्युपपुराण' के सम्पादक डा. ब्रजेश कुमार शुक्ल ने उपर्युक्त सभी स्थलों से प्राप्त सूची का संकलन किया है जिसमें साम्बपुराण का उल्लेख हुआ है। केवल वायुपुराण के रेवा-माहात्म्य से संकलित श्लोक में साम्ब-पुराण का नामोल्लेख तो नहीं हुआ है किन्तु सूर्य से सम्बद्ध दो संहिताओं को ब्रह्म-पुराण का खिलभाग माना गया है, जिनमें एक सौर संहिता है तथा दूसरी संहिता के रूप में साम्ब-पुराण को माना जा सकता है। नाग प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित सौर-पुराण के अवलोकन से पता चलता है कि यह शिव-माहात्म्य से सम्बद्ध पुराण है किन्तु इसके वक्ता सूर्य हैं। अतः इसे सौर-पुराण कहा गया है; इसमें सूर्योपासना का कोई प्रसंग नहीं है।

अल्बेरुनी (१०२० ई०) ने साम्ब की एक प्रतिमा की चर्चा की है, किन्तु साम्ब-पुराण का उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने युगमान पर विवेचना करते हुए एक 'आदित्य-पुराण' का उल्लेख किया है जो वर्तमान में सौर-पुराण है। तथापि हेमाद्रि एवं लक्ष्मीधर के उल्लेख से इतना तो निश्चित है कि साम्ब-पुराण की रचना १२६० ई. से पहले हो चुकी थी; अथच उन्होंने उप-पुराणों की सूची में साम्ब-पुराण की चर्चा की है। अतः उक्त पुराण की रचना एवं प्रतिष्ठा पाने के लिए दीर्घकाल की अपेक्षा है।

सूर्योपासना का यह उपपुराण पर्याप्त प्रसिद्ध रहा है। मेरी जानकारी में अभी तक इसके छह संस्करण हो चुके हैं—

१. प्रथम संस्करण १८९९ ई. में क्षेमराज श्रीकृष्णदास के द्वारा वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई से हुआ। यह ब्रह्मपत्रात्मक संस्करण था; जिसमें १२० पत्र थे।

२. इसके बाद १९४२ ई. में संस्कृत मूल मात्र मुंबई से ही प्रकाशित हुआ।

३. सन् १९४७ ई. में गंगाधर शास्त्री के सम्पादन में हिन्दी अनुवाद के साथ दो खणडों में श्रीजयकाम राजेन्द्र ग्रन्थरत्नमाला के ४३वें पुष्प के रूप में मैसूर से प्रकाशित हुआ।

४. सन् १९९५ ई० में विनोद चन्द्र श्रीवास्तव ने विस्तृत भूमिका के साथ केवल हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन इण्डोलॉजिकल पब्लिकेशन इलाहाबाद से किया। इसकी भूमिका में सूर्योपासना की परम्परा पर विस्तार से विवेचन हुआ है। इस सम्पादन पर गंगा सागर राय की समीक्षा अखिल भारतीय काशिराज ट्रस्ट की शोध-पत्रिका 'पुराणम्' की अंक संख्या २४, जनवरी १९८२ में प्रकाशित हुई।

५. सन् १९८३ ई. में श्री कृष्णमणि त्रिपाठी के सम्पादन में कृष्णदास संस्कृत सीरीज के ४८वें पुष्प के रूप में कृष्णदास अकादमी, वाराणसी से संस्कृत मूल मात्र प्रकाशित हुआ।

६. सन् १९८३ में ही ''वशिष्ठविरचितम् श्रीसाम्बपुराणम्'' के नाम से गोस्वामी श्री बिजन बिहारी द्वारा बँगला में अनुवाद एवं भूमिका सहित नवभरत पब्लिकेशन, कोलकाता से बँगला लिपि में प्रकाशित हुआ। इस प्रकाशन में १५ पृष्ठ भूमिका तथा ४७० पृष्ठ में मूल एवं अनुवाद है। इस संस्करण में प्रत्येक पृष्ठ पर पाद टिप्पणी है। भूमिका में अनुवादक ने इस उपपुराण का पूर्णतः पाठोद्धार कर इसे शुद्ध रूप में प्रकाशित करने का दावा किया है।

साम्बपुराण की एक पाण्डुलिपि मधुबनी जिला के हटाढ़ रुपौली गाँव में स्व. पं. अमरनाथ झा के परिवार में उपलब्ध है। इसका विवरण इस प्रकार है–

नाम	–	साम्ब-पुराण
प्राप्ति-स्थान	–	स्व. पं. अमरनाथ झा के पुत्र पं. शम्भुनाथ झा एवं भवनाथ झा, हटाढ़ रुपौली, झंझारपुर, मधुबनी
विषय	–	पुराणेतिहास
आधार	–	कागज
आकार	–	१५" x ५', लिखित स्थान– ११" x ३.५"
पत्र सं.	–	७८
पत्रांक	–	७७ तक, १ से ८ तक जीर्ण
पृष्ठ सं.	–	१५५
प्रति पृष्ठ पंक्ति सं.	–	१२-१३

प्रति पंक्ति अक्षर संख्या	-	६२-६४
लिपि	-	तिरहुता (मैथिली)
लिपिकार	-	अज्ञात
लिपिकाल	-	अज्ञात

मुद्रित साम्ब-पुराण और इस प्रति में अध्यायों की संख्या में अन्तर है। यद्यपि इसमें ७५ अध्याय ही है किन्तु सभी श्लोक उपलब्ध हैं। मग ब्राह्मणों का मगध क्षेत्र में प्रसार की कथा इस प्रति में है। सबसे महत्त्वपूर्ण पाठ-भेद यह है कि बीजमन्त्रों में मुद्रित प्रति जहाँ 'ठः ठः' ध्वनि का व्यवहार हुआ है वहाँ इस प्रति में कहीं 'ठ ठ' ध्वनि है तो कहीं 'कहीं 'ठं ठं' भी है। बीज में ऐसा अन्तर स्थानीय परम्परा का प्रभाव है जो पाठोद्धार-चिन्तन से परे की वस्तु है।

साम्बपुराण के अन्तर्गत 'सूर्यस्तवराज' अतिलघुकाय होने के बावजूद परम्परा में प्रसिद्ध रहा है। यही कारण है कि 'कृष्ण' नामक किसी व्यक्ति के पुत्र रामाचार्य ने इसकी ''गूढार्थदीपिका'' नामक संस्कृत व्याख्या लिखी थी, जिसकी एक खण्डित पाण्डुलिपि गुजरात वर्नाकुलर सोसाइटी (GVS) में उपलब्ध है। इस पाण्डुलिपि का लेखन श्रीकृष्णदास ने सं० १५७८, श्रावण-कृष्ण चतुर्दशी गुरुवार तदनुसार १ अगस्त १५२१ ई० में किया था। इस ग्रन्थ में कुल ५० पत्र हैं जो इस लघुस्तोत्र की विस्तृत व्याख्या के द्योतक हैं। इसी ग्रन्थ की एक पाण्डुलिपि बड़ौदा ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट के ग्रन्थागार में उपलब्ध है जो शिरोमणिजी त्रिवेदी के पुत्र स्तम्भभ्रमण के द्वारा संवत् १८२१, वैशाख शुक्ल सप्तमी, शनिवार तदनुसार २७ अप्रैल, १७९५ ई. में लिखी गयी। इस पाण्डुलिपि का तीसरा श्लोक इस प्रकार है-

नत्वा कृष्णं गुरुं देवं साम्बं जाम्बवती सुतम्।
तत्प्रणीतं रवेः स्तोत्रं व्याख्यास्यामि यथामतिम्।।

इन दोनों पाण्डुलिपियों का विवरण David pingree ने ``Census of the Exact Science in Sanskrit " सीरीज A. के पाँचवें भाग में दिया है।

मिथिला में भी इस सूर्यस्तवराज की ख्याति को देखते हुए पुस्तक भण्डार, लहेरियासराय से हनुमान प्रसाद, विद्यापति प्रेस से ''गोसाञिक नाओ'' के नाम से तिरहुता (मैथिली) लिपि में इसका मुद्रण हुआ, जिसमें वराह पुराणोक्त गंगास्तव एवं महादेवस्तव भी संकलित किया गया। इन पंक्तियों के

लेखक को भी अपने पिता के मुख से सुनते-सुनते ही यह स्तोत्र कण्ठस्थ हुआ है।

कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय के व्याकरण-विभागाध्यक्ष आचार्य कृष्णानन्द की कृति सूर्यस्तवराज की श्लोकबद्ध व्याख्या इसके परिशिष्ट रूप में यहाँ प्रकाशित है।

साम्ब-पुराण के काल-निर्धारण के लिए एक महत्त्वपूर्ण अन्तःसाक्ष्य ३१वें अध्याय में है। इस अध्याय में प्रतिमा-निर्माण की विधि वर्णित है, जिसमें पैरों की संरचना का परिमाप इस प्रकार है- गुल्फ से नीचे ४ अंगुल ऊँचा, ६ अंगुल चौड़ा, अंगुष्ठ की लम्बाई ३ अंगुल तथा सम्पूर्ण पैर की लम्बाई १४ अंगुल होनी चाहिए। इसी अंगुल प्रमाण से सम्पूर्ण प्रतिमा की लम्बाई ८४ अंगुल होनी चाहिए। यहाँ पैरों को छिपाने की कोई चर्चा नहीं है, जबकि वराहमिहिर ने बृहत्-संहिता के ५७वें अध्याय में जंघा तक पैरों को छिपाने की बात कही है-

''कुर्यादुदीच्यवेषं गुढं पादादुरोर्यावत्''।

यही कारण है कि गुप्तकाल के बाद रथ पर अवस्थित सूर्य की प्रतिमा बनने लगी है, जिसमें पैर अपने आप छिप जाते थे।

कुषाण-काल एवं गुप्त-काल में अनेक प्रतिमाएँ बनी हैं, जिनमें सूर्य के जूते स्पष्ट रप से अंकित हैं। साम्ब-पुराण में जूतों के अंकन की बात तो नहीं है, किन्तु छिपाने की भी बात नहीं है। अतः वराहमिहिर (६०० ई० लगभग) से पूर्व या समकाल में ऐसी एक धारा रही होगी, जब प्राचीन परम्परा के अनुसार जूतों के अंकन का विरोध हुआ होगा और दूसरी धारा में उस भाग को छिपा देना श्रेयस्कर माना गया होगा। मार्कण्डेय-पुराण, जो गुप्तकाल की रचना है, उसमें सूर्य के पैरों को अपूज्य बतलाया गया है। वस्तुतः सूर्य का जूता शकों एवं कुषाणों के मूर्ति-विज्ञान का अंग था, जिसे भारतीय मानसिकता पचा नहीं सकी और एक धारा में बिना जूता के अंकन की प्रवृत्ति पनपी तो दूसरी धारा में जूता को 'अवगुण्ठन' करने की प्रवृत्ति रही। बाद में रथ पर बैठी हुई मूर्ति का प्रचलन हुआ, जिसमें पैर स्वयं प्रच्छन्न रहते थे; विष्णुधर्मोत्तर-पुराण (३।६७।२) ने इस धारा का प्रवर्तन किया। इस प्रकार जूता-रहित सूर्य की स्थानक प्रतिमा के निर्माण की विधि के उल्लेख के कारण इस साम्ब-पुराण का रचना काल ५०० ई. के लगभग माना जा सकता है। इसी मूर्ति-विज्ञान की परम्परा के आधार पर

डा. आर.सी. हाजरा ने ``Studies in the Upa-purāṇas" में कम से कम इस ३१वें अध्याय का रचना काल ५००-८०० ई. के बीच माना है।

पुरातात्त्विक अनुसन्धानों के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि भारत में सूर्य की सबसे महत्त्वपूर्ण, विशाल एवं प्राचीन मूर्ति चन्द्रभागा नदी वर्तमान चनाब के उत्तरी तट पर मुल्तान (प्राचीन मूलस्थानपुर) में थी, जिसकी प्रतिकृति मथुरा के गोकर्णेश्वर से उपलब्ध हुई है। मुल्तान में सूर्योपासना प्रारम्भ होने की यह कथा, शाकद्वीप (वर्तमान सेस्टान, ईरान) से सूर्योपासक ब्राह्मण के रूप में मगों का भारत में आगमन तथा मगध-क्षेत्र में उनके विस्तार की कथा, पूर्वकाल में केवल सूर्यबिम्ब की प्रतिकृति की पूजा, पश्चात् विश्वकर्मा द्वारा सूर्यमूर्ति बनाने की कथा उस कालखण्ड का संकेत करती है, जब अग्नि के उपासक ईरानी माग, मग या भोजक भारत में आये और सूर्य की मूर्तिपूजा पारसीक-विधि से आरम्भ की। साम्ब-पुराण में कथा का स्वरूप तथा व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ अपने मूल स्वरूप में है। यहाँ सूर्य-पत्नी के रूप में निक्षुभा या ऋक्षुभा तथा राज्ञी का उल्लेख हुआ है, जिनमें पहली निक्षुभा (ऋक्षुभा) की भारतीय व्युत्पत्ति कष्टकल्पना मात्र होगी।

प्रसिद्ध चन्द्रभागा नदी ओड़िशा प्रान्त मे भी देखी जाती है। जहाँ से निकट में कोणार्क नाम से सूर्य मन्दिर भग्नावशेष रूप में विद्यमान है। रथसप्तमी के दिन यहाँ इस नदी में जनता रोग-मुक्ति हेतु स्नान करती है तथा सूर्यराधन भी।

सूर्योपासना की यह कथा भविष्य-पुराण में भी आयी है किन्तु वहाँ परवर्ती एवं विकसित कथा है। यद्यपि लक्ष्मीधर (गढ़वाल राजा गोविन्दचन्द्र-१११४-११५४ ई., के सभामण्डित) ने इसे मत्स्य-पुराण के आधार पर भविष्य-पुराण से उद्‌भूत माना है। साम्ब-पुराण के सम्बन्ध में लक्ष्मीधर कृत 'कृत्यकल्पतरु' में एक महत्वपूर्ण सूचना है। ब्रह्मचारिकाण्ड के धर्मनिर्णय के प्रसंग में मत्स्य-पुराण को उद्धृत करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार पद्म-पुराण से परसिंहसम्बन्धी वर्णन लेकर नरसिंह-उपपुराण की रचना हुई; कार्तिकेय द्वारा वर्णित नन्दा-माहात्म्य नन्दीपुराण के नाम से प्रसिद्ध हुआ है, उसी प्रकार भविष्य-पुराण से साम्ब की जो कथा ली गयी, उसे साम्ब-पुराण कहा गया।

पाद्मे पुराणे यत्प्रोक्तं नरसिंहोपवर्णनम्।
तदष्टादशसाहस्त्रं नारसिंहमिहोच्यते।।

नन्दाया यत्र माहात्म्यं कार्तिकेयेन वर्ण्यते।
नन्दीपुराणं तल्लोकैः नन्दाख्यमिति कीर्त्यते।।

यत्तु साम्बं पुरस्कृत्य भविष्यति कथानकम्।
प्रोच्यते तत्पुनर्लोके साम्बमेतन्मुनिव्रताः।

[एवमादित्यसंज्ञा च तत्रैव परिगद्यते।।
अष्टादशभ्यस्तु पृथक् तदेतेभ्यो विनिर्गतम्।।]

'विनिर्गतम्' उद्भूतम्। यथा कालिका-पुराणादि।।

मत्स्यपुराणे ५३, ६०-६४

भविष्य-पुराण के ब्रह्मपर्व में ४७वें अध्याय (खेमराज श्रीकृष्णदास संस्करण, पुनर्मुद्रण-नाग प्रकाशन, दिल्ली) में सप्तमी तिथि का कल्प है। यहाँ से सूर्योपासना का प्रसंग प्रारम्भ होती है जो १८६वें अध्याय तक प्रसृत है। इस विस्तृत स्थल में साम्ब को दिये गये शाम की कथा, साम्ब द्वारा सूर्याराधन, शाकद्वीप से भोजक अथवा मग-ब्राह्मणों का आनयन, उनके द्वारा सूर्य की पूजा आदि विषयों का वर्णन है। इसमें भी 'खषोल्क' (खखोल्क?) मन्त्र का वर्णन हुआ है। यहाँ तक कि साम्ब-पुराण का प्रख्यात स्तोत्र 'सूर्यस्तवराज' इस अंश के १२८वें अध्याय में अविकल संकलित है। साम्ब-पुराण में जो भी श्लोक हैं उसे विस्तार देकर यह अंश भविष्य-पुराण में उपलब्ध है। सूर्यमूर्तिनिर्माण के लिए वृक्ष-चयन एवं मूर्ति-निर्माण की विधि अक्षरशः अभिन्न है। ऐसा प्रतीत होता है कि साम्ब-पुराण को परवर्ती विस्तार देकर यह अंश लिखा गया है। साम्ब-पुराण एवं भविष्य-पुराण का तुलनात्मक पाठालोचन शोध का एक महत्वपूर्ण विषय हो सकता है, जिससे सूर्याराधना पर विशेष प्रकाश पड़ेगा।

आहुतिप्रधान यज्ञात्मक वैदिक उपासना की इस धरा पर उपचार-प्रधान मूर्ति पूजा कब से प्रारम्भ हुई, यह आजतक विवाद का विषय है। कई विद्वानों ने इसे बौद्धधर्म में महायान शाखा में बुद्ध की पूजा से प्रभावित माना है और इसका आरम्भ दूसरी शती ईसा-पूर्व प्रतिपादित किया है। किन्तु पाणिनीय सूत्र- "जीविकार्थे चापण्ये" में बिना विक्री के ही मूर्ति से जीविका चलने की बात का उललेख होना मूर्ति पर चढ़ावा चढाये जाने तथा उससे मूर्ति के स्वामी की जीविका चलने की बात का संकेत करता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि ब्राह्मण-

धर्मसूत्र में मूर्तिपूजा मौर्यकाल से आरम्भ हुई है। पाणिनीय सूत्र जीविकार्थे चापण्ये (५१३१९९) पर पतंजलि ने लिखा है- "अपण्ये' इत्युच्यते तत्रेदं न सिद्ध्यति- शिवः, स्कन्दः विशाख इति? किं कारणम्? मौर्यैर्हिरण्यार्थिभिरर्च्चाः प्रकल्पिताः (पाठान्तर-कल्पिताः) भवेत्तासु न स्यात् यास्तु एताः सम्प्रति पूजार्थास्तासु भविष्यति (जीविकार्थे)। तात्पर्य है कि इससे पूर्वसूत्र 'इवे प्रतिकृतौ' (५१३१५६) से प्रतिकृति अर्थात् मूर्ति से 'कन् ' प्रत्यय होता है। जैसे भगवान् शिव की मूर्ति यदि बेचने के लिए बाजार में रखी गयी हो तो उसे 'शिवक' कहेंगे। किन्तु यदि मूर्ति जीविका के लिए हो लेकिन विक्रय के लिए न हो तो उस 'कन् ' प्रत्यय का लोप हो जाता है। इसका उदाहरण दिया गया है कि मौर्यों ने जीविका के लिए, धन के लिए मूर्ति की अर्चना आरम्भ की। इस शुंगकालीन साहित्यिक सामग्री से यह सूचना मिलती है कि मौर्यकाल में मूर्ति की बिक्री भी की जाती थी और मूर्तियों पर चढ़ावा के रूप में लोग 'हिरण्य' भी चढ़ाते थे, जिससे लोगों की जीविका चलती थी। यदि प्रतिकृति की बिक्री के अतिरिक्त जीविका के लिए मूर्ति की अन्य कोई उपयोगिता नहीं होती तो पाणिनी का यह सूत्र ही व्यर्थ होता। अतः पाणिनि के काल में भी मूर्तिपूजा और मूर्ति बिक्री होती थी। अतः ईसा-पूर्व दूसरी शती से पूर्व भी मूर्ति-पूजा का प्रमाण मिलने से मूर्तिपूजा का महायान-मूलक सिद्धान्त चिन्तनीय है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भारत में मूर्ति-निर्माण का आरम्भ यूनान के साथ सम्पर्क के बाद माना जाता रहा है। इसी काल में उपासना की विधि ईरान के शाकद्वीप से आयातित मानना और मगों द्वारा भारत में इसके प्रचार-प्रसार की बात से मूर्ति-पूजा का प्रारम्भ मौर्य-काल तक चला जाता है जो तत्काल सन्तोषजनक है। यही आगम की परम्परा का भी प्रारम्भिक काल रहा है। इस तथ्य को पुष्ट करने में साम्ब-पुराण हमें साहित्यिक साक्ष्य देता रहा है। वैदिक परम्परा के ग्रन्थ यद्यपि मगों को विशुद्ध वैदिक-कर्म के समय त्याज्य मानते रहे हैं। जैसे श्राद्धकाल में उनकी उपस्थिति तक निषिद्ध मानी गयी है- **कूष्माण्डं महिषीक्षीरं बिल्वपत्रमगद्विजाः** इत्यादि। यह सम्प्रदायान्तरता के कारण हुआ है; किन्तु आगम के क्षेत्र में उनकी सर्वोपरिता के ऐतिहासिक साक्ष्य भी हैं।

साम्ब-पुराण आगम की जो परिभाषा देता है वह नितान्त स्वाभाविक एवं अन्वर्थक है। यहाँ कहा गया है – **आहूयन्ते देवतात्र स तेनागमः स्मृतः।** अर्थात् यहाँ देवता का आह्वान किया जाता है, उनका आगमन होता है इसलिए

उसे 'आगम' कहते हैं। इसके विपरीत जहाँ देवताओं को उपहार के रूप में हविष्य भेजा जाता है वह 'निगम' है। जबकि बाद में निगमागम की परिभाषा में शिव-पार्वती के संवाद तथा वैष्णव पांचरात्र को जोड़कर इसे एकदम रूढ़ और अस्वाभाविक बना दिया गया। पद्मसंहिता में कहा गया है -

आगतं पञ्चवक्त्रात्तु गतं च गिरिजानने।
मतं च वासुदेवस्य तस्मादागममुच्यते।।

साम्ब-पुराण आगम की किसी भी शाखा-पाञ्चरात्र, गाणपत्य, सौर, शाक्त एवं शैव का उल्लेख नहीं करता है जबकि बाद के आगम-ग्रन्थ वाही न वाही इसका संकेत अवश्य कर देते हैं। यह भी साम्ब-पुराण की प्राचीनता का द्योतक है।

साम्बपुराण के वर्तमान आयाम में अध्यायों की संख्या ८४ है किन्तु दो अध्यायों का एक में विलय और एक अध्यायों को दो भागों में विभक्त कर देने के कारण क्वचिद् अध्यायों की संख्या एवं विषयवस्तु में अन्तर भी उपलब्ध है। प्रकाशित संस्करण का ५२वाँ अध्याय विचारणीय है। इसका प्रथम श्लोक ''**अहं चेदं प्रवक्ष्यामि रहस्यं ज्ञानमुत्तमम्** इत्यादि ज्ञान, भक्ति एवं क्रिया योगात्मक त्रिस्कन्धात्मक आगम के ज्ञानयोग की भूमिका है, जबकि अगला श्लोक ''**प्रथमं शोधयेद् भूमिं स्थानानि च यथाविधि**'' इत्यादि क्रियायोग (कर्मकाण्ड) का प्रारम्भ है। प्रथम श्लोक के अनुसार इस अध्याय में सूर्य का सैद्धान्तिक विवेचन होना चाहिए, जो पूर्ववर्ती पृथक् अध्याय के रूप में ''**देवा ऊचुः**'' से प्रारम्भ कर दे दिया गया है। वस्तुतः यह सम्पूर्ण अध्याय ५२वें अध्याय के रूप में होना चाहिए और भूमिशोधन की विधि से आरम्भ कर अगला अध्याय होना चाहिए।

साम्ब-पुराण के आयाम के सम्बद्ध एक और महत्वपूर्ण तथ्य है कि इसमें ५७वें अध्याय से ८२ वें अध्याय तक किसी शैवागम का अंश जुड़ा हुआ है। इस बीच में सूर्य का उल्लेख न होकर, रूद्र, शिव, महेश्वर का उल्लेख है। सूर्य का खखोल्क मन्त्र इतने अंशों में उपलब्ध नहीं है। जबकि ७८वें अध्याय के अन्त में कहा गया है-

स पुनर्वर्णयंस्त्वेवं शिवं गच्छत्यसंशयम्।
पुनरावर्तिनो न स्युः सर्वतश्चाधिकारिणः।।

इसी प्रकार ६८वें अध्याय के अन्त में कहा गया है-

सर्वमन्त्रात्मका देवाः सर्वदेवाः शिवात्मकाः।
शिवमन्त्रपदैर्बीजैः कालाकालं कृपादिभिः।।

बुद्ध्या सम्यग् यथान्यायं सिद्धिराशु प्रवर्तते।।

६९वें अध्याय का प्रारम्भ भी शैवागम के अनुरूप हुआ है-

तत्त्वानुसारेण पथः क्रमशोऽथानुवर्ण्यते।
शिवलोकं यथा येन प्रविशेद् गृहवद् गृही।।

अनेकशोऽभिषिक्तश्च शिववद् गुरुपूजकः।
अर्पितः शिवयोनौ च गर्भश्चाम्बिकया धृतः।।

इस प्रकार प्रतीत होता है कि ज्ञानोत्तर पटलात्मक अंश बाद में जोड़े गये हैं जिसके काल-निर्धारण के लिए कोई महत्त्वपूर्ण तथ्य उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार मगों का मगध देश में विस्तार की बात भी स्थानीय प्रक्षेप प्रतीत होता है किन्तु अभिलेखीय प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि मगध-क्षेत्र में मगों के आगमन की कथा १२वीं शती से पूर्व प्रचलन में थी। गया जिला में शक सं. १०५८ (११३७ ई.) का एक शिलालेख मिला है, जिसमें सूर्योपासक मग ब्राह्मणों को दान दिये जाने का उल्लेख हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साम्ब-पुराण अपने मूल-स्वरूप में कम से कम गुप्तकाल की रचना है और इतने दीर्घकाल तक सूर्योपासना की परम्परा में उसका महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

पण्डित श्रीभवनाथ झा

हेटाढ़ रूपौली, झकारपुर, मधुबनी

सम्प्रति : प्रकाशन प्रभारी

महावीर मन्दिर, पटना

बिहार, पिन - ८००००१

□□